१ ओअंकार (१ਓ) सति गुर प्रसादि

जैन मत और गुरमति

तुल्नातमिक धर्म अध्ययन

>< >< >< >< >< >< >< >< >< >< ><

मूल रूप में

सिक्ख मिशनरी कॉलेज (रजि.)
लुधियाना द्वारा प्रकाशित पुस्तक

क्रांतिकारी जगत् गुरू नानक देव चैरिटेबल ट्रस्ट, चण्डीगढ़

लॉन्च करता : जसबीर सिंघ
Mob. : 099881-60484, 62390-45985

Type Setting : Radheshyam Choudhary
Mob. : 098149- 66882

Download Free

जैन मत और गुरमति

जैन मत का जन्म और विकास : जैन मत भारत के प्राचीन मतों में से माना जाता है। इसके कई तत्व, ऋगवेद के मत से भी पुराने हैं। यह मूल रूप में उदासियों साधुओं, योगियों का मत है। इसके तत्व हड़प्पा काल की सभ्यता में भी पाए जाते हैं। यह अपने मूल में गैर-वैदिक तथा गैर-आर्य धर्म है।

आम तौर पर यह प्रसिद्ध है कि इस मत के संस्थापक **वर्धमान महांवीर** थे। परंतु जैनी स्वयं ऐसा नहीं मानते । उनके अनुसार इस मत की नींव ऋषभ नाथ ने रखी थी और उसके पश्चात 23 तीर्थाकरों ने इस को प्रचारित किया है। सब से अंतिम, 24वां तीर्थाकर महावीर है, जिसने पहले के तीर्थाकरों के विचारों में सुधार किया है। परंतु विद्वानों का विचार है कि ऋषभ नाथ और उसके पश्चात 21 तीर्थाकर पार्शवनाथ ही इतिहासिक व्यक्ति हैं।

श्री पार्शवनाथ वाराणसी के राजा अश्वसेन के घर पैदा हुए थे। उनका पालन-पोषण बहुत ठाठ-बाठ से हुआ। 30 साल की आयु में उन्होंने घर-बार त्याग दिया। 83 दिनों की कठोर तपस्या के पश्चात उन को परम ज्ञान की प्राप्ति हुई। उन की शिक्षाओं के चत्रयाम (चार प्रण) करके माना जाता है।

(1)	अहिंसा	:	किसी जानदार जीव को नहीं मारना।
(2)	सुनचित	:	झूठ नहीं बोलना।
(3)	असत्य	:	जो स्वयं न दिया हो, वह किसी से नहीं लेना।
(4)	अप्रीग्रहि	:	सांसारिक वस्तुओं के संग मोह नहीं करना।

बाद में **वर्धमान महांवीर** ने इस प्रणों में एक प्रण और जोड़ दिया। वह है - **ब्रह्मचर्य।** अत: इन पांच शिक्षाओं को **पंचवत** कहा जाने लगा।

वर्धमान महांवीर का जन्म 599 पू. ई. में कंड ग्राम नामक नगर में हुआ। यह जिला मुज़फर नगर के वैशली शहर के पास ही है। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ था और माता का नाम त्रिसला। उनके पिता एक अमीर क्षत्रीय थे जो ज्ञात्रिक कबीले के काश्प गौत्र में से थे। वर्धमान महांवीर के नाम के बारे में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके साथ कई विशेषण जोड़े जाते हैं, जैसे कि वर्धमान, महांवीर, जिन्न अरहत आदि।

वर्धमान महांवीर का **विवाह सशोधा** के संग हुआ था, जिसने एक लड़की (प्रिया दर्शना) को जन्म दिया। पर यह सब कुछ वर्धमान के मन को मोह न सके। वह ज्ञान और शांति की तलाश करना चाहता था। अपने माता-पिता की मृत्यु के पश्चात, उसने अपने भाई से आज्ञा ले कर घर-बाहर छोड़ दिया। तब उस की आयु 30 वर्ष की थी। उस ने 12 वर्षो के लंबे समय के लिए घोर तपस्या की। इस समय उसको कई -कई दिन भूखे और वस्त्र-विहीन रहना पड़ा। तेरहवे वर्ष में **जरिम भिकग्राम** नगर से बाहर **ऋजपालक** नदी के किनारे पर साल के वृक्ष के नीचे उन्हें **परम ज्ञान** की प्राप्ति हुई। अपने जीवन के तीस वर्ष उन्होंने अहिंसा, सच्चाई, पवित्रता, निर्मोह, तप, ज्ञान आदि का प्रचार किया और 527 ई. पू. में बिहार के **पावा नगर** में 72 वर्ष की आयु में, वे **परलोक गमन** कर गए।

वर्धमान के जीवनकाल में ही जैन मत उत्तरी भारत में अपनाया जाने लगा था। जैनी यह भी कहते हैं कि मग्ध सल्तनत के राजा बिंबीसार व उसके पुत्र अज्ञात शत्रु ने जैन मत को अपना लिया था। मग्ध का राजा नंद चंद भी जैन मत का अनुयाई था। राजा चंद्र गुप्त मौर्य पर भी जैन भिक्षु भद्र बाहू का बहुत प्रभाव पड़ा था। उसने अपना राज-काल त्याग कर भद्र बाहु व अन्य जैनियों के साथ मिलकर दक्षिण भारत में जैन मत का प्रचार किया।

इसके पश्चात दक्षिणी भारत, जैन विद्वता का एक स्थाई केंद्र बन गया। बहुत से विद्वानों ने इस प्रचार में भाग लिया। कई राजाओं ने भी इस मत को धारण कर लिया जिन में से राष्ट्र कूट राजाओं के समय में हरमन प्यारा (राजमत) होने के कारण इसक

बहुत प्रसार हुआ। बहुत से जैन मंदिर अस्तित्व में आए।

पश्चिमी भारत में भी यह मत फैला। महांवीर जी के 100 साल के पश्चात गुजरात में **वल्लभी** नाम के स्थान पर तीसरी जैन कौंसिल बुलाई गई, जिस में जैन मत के ग्रंथों को अंतिम रूप दिया गया।

आज भी इस धर्म के अनुयाई महाराष्ट्र, गुजराज, कर्नाटक, पंजाब व बंगाल आदि में कहीं - कहीं मिल जाते हैं।

जैनियों के संप्रदाय : जैनियों में मतभेद हो जाने के कारण इसके कई संप्रदाय बन गए जिन में से **दिगंबर** और **श्वेतांबर** मत प्रसिद्ध हैं। धीरे - धीरे इन में कई सैद्धांतिक मतभेद पैदा हो गए। दिगंबर जैन संप्रदाय के निम्नलिखित विचारों को श्वेतांबर जैन संप्रदाय वाले गलत मानते थे, कि

(1) भिक्षुओं को हमेशा नंगे रहना चाहिए।

(2) कैवल ज्ञान की अवस्था पर पहुंचे हुए व्यक्ति को भोजन की आवश्यकता नहीं रहती।

(3) स्त्रियां **मोक्ष** (मुक्ति) प्राप्त नहीं कर सकती।

(4) वर्धमान महांवीर ने **विवाह** नहीं करवाया था।

इसके पश्चात, उपरोक्त दो संप्रदाय कई उप - संप्रदायों में बंट गए। दिगंबर संप्रदाय के मशहूर उप - संप्रदाय इस प्रकार हैं :

द्राविड़ संघ, काशन संघ, मथुरा संघ, तेरा पंथ, बीस पंथ व गुमान पंथ आदि। ये सारे उप - संप्रदाय भिन्न - भिन्न आचार्यो के प्रभाव के कारण अस्तित्व में आए और पांचवीं से अठारहवीं शताब्दी तक इनका प्रसार हुआ। श्वेतांबर संप्रदाय के मुख्य उप - संप्रदाय स्थानीय वासी और पंथी हैं। यह दोनों संप्रदाय मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे और मंदिरों का भी उन्होंने त्याग किया। मंदिरों में रहने की जगह उन्होंने स्थानक (घर) बनाए। स्थानकवासी संप्रदाय लोकां नामक संप्रदाय में से निकला और 15वीं से 18 वीं शताब्दी तक इसका प्रचार - प्रसार हुआ। 18वीं सदी में इस में से **तेरा पंथी** संप्रदाय का उद्‌भव हुआ। इसको भीखण जी ने चलाया। इस संप्रदाय के लोग स्थानीय लोगों से विरक्त रह कर अलग ही रहते थे।

आज भारत के अलग - अलग भागों में इन संप्रदायों के जैनियों को देखा जा सकता है भले ही वे बहुत अल्पसंख्या में हैं। प्रसिद्ध जैनी आचार्य तुलसी, संप्रति तेरापंथी संप्रदाय के व्याख्याकार हैं।

जैन मत के मौलिक सिद्धांत :

जैन शब्द की उत्पत्ति **जिन्ना** शब्द से हुई है। इसका अर्थ है वह व्यक्ति जिस ने अपनी अज्ञानता, इच्छाओं व लालसाओं पर नियंत्रण पर लिया हो। जिन वह है जो जैन मत के मोक्ष प्राप्त कर चुके अध्यापकों (जिन्नों) की शिक्षाओं पर चलता है।

जैन मत की फिलासफी में त्री - रतन और नौ - शिक्षाएं विशेष स्थान रखती हैं। इन में संपूर्ण जैन - फिलासफी समझाई गई है।

(क) त्री - रतन इस प्रकार हैं : (1) साम्यक ज्ञान (2) साम्यक दर्शन और (3) साम्यक चरित्र। इन तीनों के साझे यत्नों से मोक्ष की प्राप्ति माना गया है।

जैन मत का सब से ऊँचा आदर्श ही मोक्ष को प्राप्त करना है। जैन मत के अनुसार आत्मा का शरीर से संबंध, कर्मा के कारण ही होता है।

जब कर्म आत्मा की ओर आते हैं तो इस अवस्था को आसरव कहा जाता है। जब कर्म आत्मा में प्रवेश करके उस को जकड़ लेते हैं तो **बंध** की अवस्था पैदा हो जाती है। जैनियों के अनुसार त्री रतन नए कर्मो के आसर्व को रोकते हैं। इस अवस्था को संवर का नाम दिया गया है। फिर पुराने एकत्र किए हुए कर्म नष्ट करने चाहिएं जब वे नष्ट हो जाएं तो **निरजरा** अवस्था पैदा हो जाती है। कर्मो से छुटकारा पा कर आत्मा शरीर से मुक्त हो जाती है और अनंत ज्ञान तक पहुंच जाती है। इस अवस्था को मोक्ष की अवस्था कहा जाता है। अत: मोक्ष की प्राप्ति के लिए त्री रतन एक महत्वपूर्ण रोल अदा करते हैं। फिर, कर्मो का आत्मा की ओर आसर्व का कारण कसाया (Passions) ही हैं जो अज्ञानता से उत्पन्न होती हैं। इसलिए सच्चाई से अज्ञानता ही बंध का असली

कारण है। अज्ञानता साम्यक ज्ञान (सही ज्ञान) द्वारा ही दूर की जा सकती है। पर साम्यक ज्ञान की प्राप्ति के लिए साम्यक दर्शन की बहुत जरूरत है। साम्यक दर्शन का भाव तीर्थकरों की शिक्षाएं है। इसके अतिरिक्त यह साम्यक चरित्र ही है जो साम्यक ज्ञान और दर्शन को संपूर्ण बनाता है। अत: त्री रतन ही जैन मत के अनुसार मुक्ति के साधन हैं।

(ख) नौं सच्चाईयां : (तत्व) : जैन मत की मूल शिक्षाओं को नौ सच्चाईयां या तत्व कहा जाता है। ये इस प्रकार हैं :

(1) **जीव :** जीव शब्द का प्रयोग जानदार वस्तुओं या आत्मा के लिए किया गया है। सभी चेतन पदार्थ इस श्रेणी में आ जाते हैं। जैनी एक आत्मा में विश्वास नहीं करते बल्कि कई प्रकार की आत्माओं के अस्तित्व को मानते हैं। इसलिए जीवों को कई श्रेणियों में बांटा गया है। जैसे दैवी पुरुष, नर्की पुरुष, पशु, पक्षी, पौधे आदि। पर विशेष कर जीव को दो श्रेणियों में बांटा गया है - बंधनों में पड़े हुए जीव और मुक्त जीव। आत्मा को अपने आप में पवित्र और स्थाई माना गया है। पर कर्मो की मैल के कारण अपने मूल रूप में वह नजर नहीं आती है। जब कर्मो का पर्दा दूर हो जाता है तो यह अपने मूल रूप में चमक उठती है।

(2) **अजीव :** अजीव का अर्थ है निर्जीव पदार्थ । सभी चेतनाहीन वस्तुएं इस श्रेणी में आती हैं।

जीव और अजीव के मेल से **बंधन** पैदा होता है और अजीव से जीव के छुटकारे से मुक्ति प्राप्त होती है।

अजीव वस्तुओं को पांच भागों में बांटा गया है - पुदगल (पदार्थ), धर्म, अधर्म, आकाश और काल। पुदगल को छोड़ कर बाकी चारों भाग रूप-रहित हैं और पदार्थ तथा आत्मा के अस्तित्व के लिए आवश्यक माने गए हैं।

(3) **पुन्य :** जीव के प्रारंभिक लक्षण पवित्रता और आनंद माने गए हैं। पर कर्मो के कारण जीव, बंधन में फंस जाता है और पुन्य या पाप करता रहता है। पुन्य अच्छे कर्मो का परिणाम हैं और यह साम्यक ज्ञान, दर्शन और चरित्र से पैदा होता है।

(4) **पाप :** पुन्य के विपरीत है पाप । यह अशुभ कर्मो का परिणाम है और भ्रष्ट ज्ञान, दर्शन और चरित्र से पैदा होते हैं।

(5) **आसर्व :** प्रत्येक आत्मा का एक शरीर से संबंध है, जो कर्मो के कारण बनता है। यह संसार कर्म बनाने वाले पदार्थो -परमाणुओं से भरपूर है। इन कर्मो की आत्मापरक तरंगों को, जो मन, वचन और शरीर के योग से चलती हैं, को आसर्व कहते हैं। आसर्व दो प्रकार के हैं, शुभ और अशुभ । शुभ आसर्व शुभ कर्मो से उत्पन्न होते हैं और अशुभ कर्मो के झुकाव को अशुभ आसर्व कहते हैं।

(6) **बंध :** कर्म, आत्मा की ओर आने के पश्चात शरीर में रच-मिच जाते हैं और जीव में लहरें और कशाय (जज्बे) पैदा करते हैं जो बंध का कारण हैं। बंध और आसर्व दोनों के अमल साथ-साथ चलते हैं। ये दोनों ही सत्य से अज्ञानता, आवृत्ति कशाय और जीव में उत्पन्न होने वाली तरंगों से पैदा होते हैं।

(7) **संवर :** कर्म पदार्थो के आत्मापरक झुकाव के अवरुद्ध होने को संवर कहते हैं। संवर के साधन हैं-साम्यक ज्ञान, व्रतों का पालन, कशाय-रहित होना और संयम। मोक्ष की प्राप्ति के लिए संवर अति आवश्यक है।

(8) **निरजरा :** जीव के पास एकत्र हुए कर्मो का नाश करने को निरजरा कहते हैं। जहां संवर कर्मो के बढ़ने और शरीर में प्रवेश को रोकता है, वहीं निरजरा एकत्र हो चुके पुराने कर्मो को नष्ट करता है। इस अवस्था की प्राप्ति के लिए तप साधना करनी पड़ती है।

(9) **मोक्ष :** जब जीव का कर्मो से पूरी तरह छुटकारा हो जाता है तो वह मुक्त हो जाता है और इस अवस्था को मोक्ष कहा जाता है। बंधन के कारण का अस्तित्व न होने के कारण और कर्म वस्तु के त्याग से ही मोक्ष प्राप्त होता है। इस अवस्था में पहुंचने के पश्चात जीव (आत्मा) पुन: बंधन में नहीं पड़ती और अपने मूल रूप में चमक उठती है।

जैनियों के अनुसार आत्मिक विकास की यह सब से ऊँची मंजिल है। इस अवस्था में पहुंचे हुए व्यक्ति संपूर्णता (सिद्धि) और शांति (उपमा) प्राप्त कर लेते हैं। वे आत्मा की सही पहचान कर लेते हैं। इस अवस्था को संपूर्ण और स्थाई आनंद की अवस्था माना गया है।

(ग) नैतिक नियम : जैन मत के अनुयाइयों को चार भागों में बांटा गया है- (1) भिक्षु (मुनी) (2) भिक्षुणियां (आरयिक) (3) संसारी पुरुष (स्राविक) और (4) संसारी स्त्रिया (स्राविका) । इन चारों वर्गो को **चतर विधी संघ** कहा जाता

है। पहले दो वर्गों में वे व्यक्ति आते हैं जो साधुओं वाला व संन्यासियों वाला जीवन व्यतीत करते हैं और दूसरे दोनों वर्गों में वे व्यक्ति आते हैं जो अन्य संसारी लोगों की भांति जीवन व्यतीत करते हैं।

संन्यासियों वाला जीवन व्यतीत करने वाले तथा संसारी जैनियों के लिए भिन्न सिद्धांत हैं। पर प्रमुख सिद्ध जिस के आसपास जैन मत की सारी फिलासफी घूमती है, वह है **अहिंसा**। अहिंसा से भाव किसी भी जानवर या जानदार जीवों को न मारना है। जैनी मानते हैं कि अहिंसा केवल कर्मो (Action) से ही नहीं होती, बल्कि मन, वचन से भी होती है। इस का अर्थ है कि जहां जानदार या बेजान वस्तुओं को न मारना अहिंसा है, वहीं उन को मारने के बारे में मन में सोचना या कहना भी हिंसा करने के तुल्य हैं। अहिंसा धारण करने के लिए प्यार और दया की भावना को धारण करना अति आवश्यक माना गया है।

अहिंसा की पांच बड़े व्रतों – पंचव्रत के रूप में व्याख्या की गई हैं। वे हैं :

1. **अहिंसा** : किसी भी जानदार जीव को न मारना।
2. **सत्य** : झूठ न बोलना।
3. **असतेय** : चोरी न करना। (जो वस्तु न दी हो वह लेनी नहीं) ।
4. **अप्रीगृहि** : सांसारिक वस्तुओं के संग मोह का त्याग।

भिक्षुओं को इन व्रतों का करड़ाई से पालन करने का निर्देश है। उनके लिए ये महत्वपूर्ण व्रत (great vows) हैं और संसारी जैनियों के लिए ये अणुव्रत, भाव छोटे व्रत (minor vows) हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कई व्रंत, संसारी पुरुषों के लिए निश्चित किए गए हैं। जैसे कि तीन प्रकार का स्वनियंत्रण (गुप्ती), पांच प्रकार की चौकसी (समिति), दस बुनियादी नेकियां (धर्म), 22 प्रकार की कठिनाइयां (प्रसाह) और 12 प्रकार के तप ।

यह सब कुछ अहिंसा को व्यवहार में लाने के लिए आवश्यक माना गया है पर अहिंसक बनने के लिए संयम (इंद्रियों पर नियंत्रण) की अति आवश्यकता है। संयम के लिए तप साधना की जरूरत है। अत: जैन मत के नैतिक सिद्धांत के तीन प्रमुख नियम हैं – अहिंसा, सयंम और तप। पूरी तरह अहिंसक रहने के लिए जैनी, नीचे लिखे साधन अपनाते हैं :

(1) केवल प्रचलित पगडंडियों व बनी हुई सड़कों पर चलना। इस तरह करने से पैरों के नीचे आ कर कुचले जा सकने वाले जीव – जंतुओं के कुचल जाने की संभावना कम हो जाती है।

(2) वचनों द्वारा ही हिंसा से बचना, भाव मुंह से दुर्वचन बोलने से परहेज करना।

(3) भिक्षा लेने के समय भी भिक्षु या साधु को यह निश्चित कर लेना चाहिए कि उस के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले भोजन में किसी प्रकार की हिंसा तो नहीं हो रही।

(4) अपने पास रखने वाली वस्तुओं की भी अच्छी तरह जांच कर लेनी चाहिए कि उनमें कोई कीड़े या जीव आदि न हों।

(5) मल – मूत्र के त्याग के समय अच्छी तरह पड़ताल कर लेनी चाहिए कि वहां पर किसी जीव – जंतु का निवास तो नहीं।

जैन मत की गुरमत से तुलना

(क) **अकालपुरख :** गुरमत एक अकाल पुरख यानी एकीश्वर के अस्तित्व में पूर्ण विश्वास करती है। अकाल पुरख ने अपना उद्भव यानी प्रकाश स्वयं से ही किया है और वह समूचे ब्रह्मांड के कण – कण में व्यापक है। गुरमत का विश्वास है कि वाहिगुरू पहले भी थी, अब भी है और हमेशा रहेगा। यथा:

आदि सचु, जुगादि सचु, है भी सचु,

नानक, होसी भी सचु ।। (जपु जी)

यथा

– जो दीसै, सो आपे आपि ।। आपि उपाए आपे घट थापि ।।

आप अगोचर, धंधै लोई ।। जोग जुगति जग जीवन सोई ।। (ओअंकार)

यथा

– जलि थलि महीअलि पूरिआ, सुआमी सिरजणहारु ।।

अनिक भांति होइ पसरिआ, नानक ऐकंकारु ।। (थिती गउड़ी महला 5, पृष्ट 216)

गुरमत की तुलना में जैन मत में प्रभु के अस्तित्व को माना ही नहीं गया है। इस प्रकार जैन मत में प्रभु और प्रभु भक्ति का अस्तित्व नहीं है। यह जैन मत का गुरमत से प्रारंभिक व बड़ा अंतर है। जैन–मत नास्तिक मत है।

(2) **आत्मा :** जैन–मत में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है पर यह आत्मा भी कई प्रकार की मानी गई है। भिन्न–भिन्न आत्माओं के आधार पर जीवों को कई श्रेणियों में बांटा गया है, जैसे दैवी पुरुष, नर्की पुरुष, पशु, पक्षी, पौधे आदि।

जहां जैन मत ने कई प्रकार की आत्माओं को माना है, वहीं गुरमत ने केवल एक ही आत्मा (अकाल पुरख की ज्योति) के अस्तिव को दृढ़ करवाया है। सभी जीवों, जतुओं व जानदार पदार्थो में एक ही आत्मा मौजूद है। गुरमत सिद्धांत है :

सभ महि जोति, जोति है सोइ ।।

तिस दै चानणि, सभ महि चानणु होइ ।।

(3) **कर्म सिद्धांत :** जैन मत का कर्म सिद्धांत बिल्कुल अपनी किस्म का ही है। इस सिद्धांत के अनुसार कर्मो की नींव परमाणु ही हैं, जिन से सारा संसार भरा पड़ा है। यह परमाणु ही हैं, जो आत्मा से चिपट कर उस को मलीन कर देते हैं। अत: आत्मा को इन कर्म परमाणुओं से बचाना ही मुक्ति है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए जीव का कर्ममुक्त होना जरूरी है। पुराने कर्मो का धार्मिक कर्मो (कार्यो) द्वारा खात्मा करना और नए कर्मो का आत्मा में प्रवेश न होने देने की वृति व क्रिया ही कर्मो के परमाणुओं से मुक्त करवा सकती है।

गुरमत का जैन मत के उपरोक्त सिद्धांत से बिल्कुल मेल नहीं है। गुरमत माया के सिद्धांत में विश्वास करती है। माया का भाव, प्रभु से दूर ले जाने वाली रुचि से है, पर माया प्रभु ने स्वयं पैदा की है। गुरू की शिक्षाओं पर चल कर मनुष्य माया पर विजय प्राप्त कर लेता है।

(4) **मुक्ति की प्राप्ति :** जैसे ऊपर उल्लेख किया गया है कि जैन मत कर्मो के मिटाने को ही मुक्ति मानता है। इस की प्राप्ति के लिए कड़ी तपस्या, कई तरह के तप, शरीर को कष्ट में डालने वाली साधना आदि की आवश्यकता है। इस तरह करने से कर्मो का अंत हो जाता है और आत्मा शरीर को छोड़ कर सीधे ऊपर उड़ती है और ब्रह्ममांड की चोटी पर पहुंच कर वहां निवास करती है जहां सारी मुक्त आत्माएं सदा के लिए रहती हैं।

गुरमत में माया और विकारों के प्रभाव से मुक्त हो जाना ही मुक्ति है। इस प्रकार इसी जीवन में ही मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है। ऐसे मनुष्य को जीवन मुक्त मनुष्य माना गया है। इस मुक्ति की प्राप्ति के लिए किसी प्रकार के कठिन तपों की आवश्यकता नहीं है, बल्कि गुरू की शिक्षा पर चल कर प्रभु के नाम का जाप करने (स्तुति गायन करने, गुण गायन करने) की आवश्यकता है। ऐसा करने से प्रभु के साथ निकटता प्राप्त होती है, जिस के कारण मनुष्य माया और विकारों के प्रभाव से मुक्ति प्राप्त कर लेता है, सहज अवस्था का मालिक बन जाता है। गुरबाणी के प्रमाण हैं :

जब गुर मिलिआ, तब मनु वसि आइआ ।।

धावत पंच रहे, हरि धिआइआ ।।

अनदिनु नगरी हरि गुण गाइआ ।। 2 ।।

सतिगुर पग धूरि जिना मुखि लाई ।।

ते हरि दरगह मुख ऊजल भाई ।। 3 ।। 5 ।। 43 ।। (गउड़ी गुआरेरी महला 4)

(5) **देवी संतों की पूजा :** जैन मत में चाहे ईश्वर की पूजा का कोई विधान नहीं है, पर जैनी देवी संतों में श्रद्ध जरूर रखते हैं और उन की पूजा करते हैं। गुरमत में ऐसे देवरूप संतों की पूजा पूरी तरह विवर्जित है। पूजा केवल अकाल पुरख की ही हो सकती है। उन मनुष्यों को जिनको लोग ईश्वर समझ कर पूजा करते थे, गुरबाणी में विकार-ग्रस्त रोगी की कहा गया है:

रोगी ब्रह्मा, बिसन, सरुद्रा, रोगी सगल संसारा ।।

हरि पदु चीनि भए से मुकते, गुर का सबदु वीचारा ।। (भैरउ, महला 1, पृष्ठ 1153)

तपस्या और अहिंसा : जैन मत में तपस्या और अहिंसा, मुक्ति के साधन माने गए हैं। वर्धमान महांवीर को भी मुक्ति, तो ही प्राप्त हुई जब उन्होंने संसार को त्याग दिया और अनेकों शारीरिक कष्ट सह कर करड़ी तपस्या की। इस बारे में जैनियों के प्रसिद्ध ग्रंथ अचारांग सूत्र में लिखा हुआ है :

''वर्धमान (महांवीर) जी ने भिक्षु बनते समय जो कपड़े पहने हुए थे, तेरह महीने में तार-तार हो कर शरीर से अपने आप ही अलग हो गए थे। तब भी इस बात से बेखबर हो कर, वर्धमान जी छोटे बालक की भांति नग्न ही बैठे रहे। इसके पश्चात उन्होंने पुन: पकड़े धारण नहीं किए।''

कल्प सूत्र में लिखा हुआ है, ''बारह वर्ष तक शरीर की ओर से पूरी तरह बेपरवाह हो कर वे हर प्रकार के कष्ट सहता रहा...... अब वह बंधनमुक्त हो गया है। इस संसार से हर तरह निर्लिप्त है।''

गुरमत में जप-तप को मुक्ति प्राप्ति की राह में रूकावट बताया गया है। इनसे तो बल्कि अहं की भावना और बढ़ती है। मनुष्य और प्रभु में दूरी और बढ़ती जाती है। सतगुरू जी का फुर्मान है :

–हठु निग्रहु करि काइआ छीजै ।।

वरतु तपनु करि मनु नही भीजै ।।

राम नाम सरि अवर न पूजै ।। 1 ।। (रामकली महला 1, असटपदीआं)

यथा

–बहु भेखु कीआ, देही दुखु दीआ ।। सहु वे जीआ, आपणा कीआ ।।

अंनु न खाइआ, साद गवाइआ ।। बहु दुख पाइआ, दूजा भाइआ ।।

बसत्र न पहरै, अहिनिसि कहरै ।। मोनि विगूता, किउ जागै गुर बिन सूता ।।

पग उपेताणा, आपणा कीआ कमाणा ।। अलुमलु खाई सिरि छाई पाई ।।

मुरखि अंधै पति गवाई ।। (आसा की वार, महला 1, पृष्ठ 467)

यथा

–नउ खंड प्रिथमी फिरै चिरु जीवै ।। महां उदासु तपीसरु थीवै ।।

अगनि माहि होमत परान ।। कनिक अस्व हैवर भूम दान ।।

निउली करम करै बहु आसन ।। जैन मारग संजम अति साधन ।।

निमख निमख करि सरीर कटावै ।। तउ भी हउमै मैल ना जावै ।। (गउड़ी सुखमनी, महला 5)

अहिंसा का पालन करने के लिए वे कई तरह के प्रयत्न करते हैं। जैसे बोलते समय मुंह के आगे वस्त्र रखना, रजोहरा (सूत का झाड़ू) हर समय अपने पास रखते हैं ताकि बैठते समय जमीन साफ की जा सके, ठंडा भोजन खाना और उबला हुआ पानी नहीं पीना, निर्मल जल से स्नान नहीं करना, जूओं की हत्या के भय से सिर के बालों को कंघी नहीं करनी, अपनी टट्टी को किसी डंडी से फैला कर उसमें से कीड़ों को खोजना कि कहीं वे मर न जाये। गुरमत में इन व्यर्थ के साधनों का खुल का विरोध किया गया है। जैनियों को सलाह दी गई है कि वे ऐसे फोकट कर्मो का त्याग करें और सतगुरू की शरण में आएं। गुरू नानक पातशाह जैनियों

के जीवन के बारे में कहते हैं - ये सरेवड़े (जैनी) 'जीव अहिंसा' के वहम में मैला पानी पीते हैं जूठी रोटी मांग कर खाते हैं, और शरीर के बाल नोच-नोच कर उखड़वाते हैं (ताकि जूएं न मर जाएं)। पाखाने को फैलाते समय गंदी हवा लेते हैं और पानी का प्रयोग नहीं करते। (भिक्षु बनने के समय) भेड़ों की भांति सिर के बाल नुचवाते हैं। उस समय राख से हाथ भर लेते हैं। अपने हाथों से परिश्रम करके परिवार का पालन-पोषण करने की जिम्मेवारी को छोड़ देते हैं जिससे इनके परिवार रोते हैं।

जैनी न तो हिंदुओं की तरह पत्तल-क्रिया करते हैं और न ही तीर्थो पर जाते हैं। वे कोई भी ब्राहमणी कर्मकांड नहीं करते। इनके जीवन में उल्लास नहीं। हमेशा रुआंसे बने रहते हैं जैसे कि उनका कोई मर गया हो। जीवों को मारने- अथवा जीवन दान देने वाले प्रभु में विश्वास नहीं रखते। न साफ पानी पीते हैं और न ही नहाते हैं। इन को गुरू की शिक्षा रूपी नदी में स्नान करना चाहिए (तो ही मुक्त हो सकते हैं)। इस प्रकरण में पूरा शबद इस प्रकार है

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी, जूठा मंगि मंगि खाही ।।
फोलि फदीहति, मुहि लैनि भड़ासा, पाणी देखि सगाही ।।
भेडा वागी सिुर खोहाइनि, भरीअनि हथ सुआही ।।
माऊ पीऊ किरतु गवाइनि, टबर रोवनि धाही ।।
ओना पिंडु न पतलि किरिआ, न दीवा मुए किथाऊ पाही ।।
अठसठि तीरथ देनि न ढोई, बहमण अंनु न खाही ।।
सदा कुचील रहहि दिनु राती, मथै टिके नाही ।।
झुडी पाइ बहहि निति मरणै, दड़ दीबाणि न जाही ।।
लकी कासे, हथी फुंमण, अगो पिछी जाही ।।
न ओइ जोगी न ओइ जंगम, न ओइ काजी मुंला ।।
दयि विगोए, फिरहि विगुते, फिटा वतै गला ।।
जीआ मारि जीवाले सोई, अवरु ना कोई रखै ।।
दानहु तै इसनानहु वंजे, भसु पई सिरि खुथै ।।
पाणी विचहु रतन उपंने मेरु कीआ माधाणी ।।
अठसठि तीरथ देवी थापे, पुरबी लगै बाणी ।।
नाइ निवाजा, नाते पूजा, नावनि सदा सुजाणी ।।
मुइआ जीवदिआ गति होवै, जा सिरि पाईऐ पाणी ।।
नानक, सिर खुथे सैतानी, ऐना गल ना भाणी ।।
वुठै होइऐ होइ बिलावलु, जीआ जुगति समाणी ।।
वुठै अंनु कमादु कपाहा, सभसै पड़दा होवै ।।
वुठै घाहु चरहि निति सुरही, साधन दही विलोवै ।।
तितु घिइ होम जग सद पूजा, पइऐ कारजु सोहै ।।
गुरू समुंदु, नदी सभि सिखी, नातै जितु वडिआई ।।
नानक, जे सिर खुथे नावनि नाही, ता सत चटे सिरि छाई ।। (माझ की वार, महला 1 पृष्ठ 149)

पद अर्थ :

मलवाणी	–	मैला पानी ।
फदीहति	–	(अरबी भाषा के शब्द फज़ीअत के ज़ को द भी पढ़ा जाता है।
फ़जूल	–	फादल, काज़ी – कादी) - अर्थ है पारवाना।
भड़ासा	–	गंदी भड़ास, हवा ।
सगाही	–	शर्माते हैं।
भरीअनि	–	भरे जाते हैं।
माऊ पीऊ किरतु	–	माता - पिता का कामकाज, रोजीरोटी कमाने का धंधा।
धाही	–	दहाड़ व किलकारियों मार कर।
किथाऊ	–	पता नहीं कहां।
कुचील	–	गंदे ।
टिके	–	तिलक टिक्का इत्यादि।
झुंडी पाइ	–	औंधी डाल कर, गर्दन ढीली छोड़कर।
दड़ दीबाणि	–	किसी सभा दीवान में।
कासे	–	प्यारे।
अगो पिछी	–	एक कतार में।
जंगम	–	शिव उपाशक, जो घंटियां बजा – बजा कर मांगते फिरते हैं। इन्हें जमकू भी कहते है।
दयि	–	ईश्वर की ओर से ।
दयु	–	प्यार करने वाला परमात्मा
विगोए	–	बिछुड़े हुए।
विगुते	–	ख्वार होते हैं, खराब होते हैं।
फिटा	–	फिटकारा हुआ, ऊत, जिसको लाहनत डाली गई हो।
गला	–	कोड़मा, कुटुंब, सारा ही टोला, कबीला।
वंजे	–	छूटे हुए, एक ओर किए हुए।
भसु	–	राख ।
मेरु	–	सुमेर पर्वत।
देवी	–	देवताओं ।
पुरबी	–	धार्मिक मेले ।
बाणी	–	कथा – वार्ता ।
नाइ	–	नहा कर।
सुजाणी	–	तहज़ीब वाले।

मुइआ जीवदिआं	–	मृत्यु जीवन प्रयंत, सारी आयु भर, जन्म से मृत्यु तक ।
गति	–	सुथरी हालत।
वुठे	–	वर्षा पड़ी।
सुरही	–	गायें।
बिलावलु	–	खुशी, चाव।
साधन	–	स्त्री।
विलोवै	–	बिलौती है।
तितु घिइ	–	उस घी से ।
पइऐ	–	(घी) का प्रयोग करने से।
नदी सभि	–	सारी नदियां।
सिखी	–	(गुरू की) शिक्षा ।
जितु	–	यश में।
चॅटे	–	मुट्ठियां।
छाई	–	राख, स्वाहा। और

‘इकि जैनी उझड़ पाइ, धुरहु खुआइआं ।।
तिन मुख नाही नामु, न तीरथि नाइआ ।।
हथी सिर खोहाइ न भदु कराइआ ।।
कुचिल रहहि दिनु राति, सबदु न भाइआ ।।
तिन जाति, न पति, न करम, जनमु गवाइआ ।।
मनि जूठै वेजाति, जूठा खाइआ ।।
बिनु सबदै आचारु, न किनही पाइआ ।।
गुरमुखि ओअंकारि, सचि समाइआ ।। (पृष्ठ 1275)

यह जैन मत की अहिंसा का प्रचार ही था, जिसने भारतीय लोगों के जीवन में से वीरता के बीज का सर्वनाश कर दिया था। (योगियों व बौद्धों ने भी लोगों को कायर बनाया था) । सिख सतगुरू साहिबान ने लोगों के अंदर वीरता का संचार किया। भक्ति के साथ शक्ति को जोड़ा, जिससे मुर्दा हो चुके इनसानों के मनों में फिर से जीवन - धड़कन होने लगी और वे शस्त्रधारी हो कर रणभूमि में जूझने लगे। जहां उन्होंने स्वयं स्वतंत्रता प्राप्त की, वहीं अन्य भारतवासियों की हजारों वर्षो की गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर रख दिया।

गुरमत सिद्धांतों की जैन धर्म के सिद्धांतों से तुलना करने के पश्चात हम इसी निर्णय पर पहुंचते हैं कि जैन मत के साथ सिख धर्म का कोई सिद्धांत या मर्यादा मेल नहीं खाते हैं।

लॉन्च करता : जसबीर सिंघ
Mob. : 099881-60484, 62390-45985
Type Setting :
Radheshyam Choudhary
Mob. : 098149- 66882